डॉग शो

दीपक शर्मा

डॉग शो

चंद्ररूपिणी को उसके माता-पिता के साथ उसके नाना हमारे घर लाए थे।

https://www.hindiadda.com/dog-show/

सन् १९६८ में।

हमारी छत के एकल कमरे में उन्हें ठहराने।

हमारे दादा और उसके नाना एक ही राजनैतिक पार्टी के सदस्य थे और अच्छे मित्र भी। हमारे दादा उन दिनों सन् सड़सठ की लोकसभा के निर्वाचित सदस्य थे और उसके नाना हमारे प्रदेश की विधान-सभा के मनोनीत सदस्य।

"मेरी यह इकलौती बेटी मेरी दूसरी पत्नी की सौतेली है और ऊपर से रुग्णा भी," चंद्ररूपिणी के नाना ने ब्यौरा दिया था, "अपने जीते-जी अपनी पत्नी के हाथों बेटी की दुर्गति मुझ से देखे नहीं बनती..."

चंद्ररूपिणी ने हमें अधिक जानने में उत्सुकता दिखाई थी।

कह नहीं सकते उसे हमारे पास खींच लाने में किस कारक की भूमिका ज्यादा बड़ी रही थी...

ग्यारह-ग्यारह वर्ष का हमारा बालपन और पंद्रह-वर्षीया उसकी किशोरावस्था?

अथवा हम दोनों भाइयों के एकरूप जुड़वाँ होने की विलक्षणता? और हमें एक दूसरे से अलग चिन्हित करने की जिज्ञासा?

या छत का वह एकल कमरा और उसमें बिछे तख्त पर चौबीसों घंटे विराजमान उसकी माँ? जो उस समय तक असाध्य माने जाने वाले अपलास्टिक एनीमिया के अंतर्गत कभी अपने नाक से रिस रहे खून को सँभाल रही होतीं तो कभी अपने मसूड़ों से रिस रहे खून को? और ऊबती-घबराती चंद्ररूपिणी वहाँ रुकना न चाहती? नीचे भाग आती?

या फिर उसके पिता की नौकरी? जो उन्हें दिन भर परिवार से दूर रखा करती? चंद्ररूपिणी को ढेर सा खाली समय देती हुई? उसके पिता दिन भर की रसोई निपटा कर मुँह अँधेरे जो अपनी साइकल से पैंतीस मील दूर बसे कस्बापुर के एक इंटर कॉलेज में भौतिक विज्ञान तथा उसके प्रैक्टिकल की शिक्षा देने निकलते तो दोपहर बाद ही लौट पाते। चंद्ररूपिणी के नाना ने क्या जान-बूझकर ऐसा दामाद चुना था जिसे रईसी ने शुरू ही से किनारे रखे रहा था?

या फिर हमारे पप्स की नवीनता? जिन में मिस्टी स्याह काला था - कोयली काला - और टफ्फी के शरीर के ऊपर के बाल काले थे और नीचे के लाल? और जो दोनों ही उन दिनों अपने दाँत निकाल रहे थे? और जिनका डॉग हाउस हमारे पिछवाड़े के उसी

आँगन में स्थित था जहाँ चंद्ररूपिणी अपनी साइकल टिकाया करती? वह दसवीं में पढ़ती थी और अपने स्कूल साइकल से आती जाती थी।

मैस्टिफ नस्ल की एक झोल में से अभी चार माह पहले हमारे दादा के एक मित्र ने हमें ये दो पप्स दिए थे। अपनी आँखें उन्होंने यहीं हमारे सामने खोली थीं। नवें-दसवें दिन। और अपने कान, पंद्रहवें-सोलहवें दिन।

जब तक अपने पाँचवें महीने में उन दोनों ने अपने अपने बयालीस के बयालीस दाँत निकाले, चंद्ररूपिणी पूरी तरह से उनके संग घुल-मिल चुकी थी। वे दोनों उसे देखते ही अपनी पूँछ हिलाने लगते और अपने टहलुवे किशोरीलाल से भोजन ग्रहण करते समय उस के हाथ से भी खाद्य पदार्थ स्वीकार कर लेते।

"देखो तो," फिर चंद्ररूपिणी ही ने कुछ माह बाद अखबार का एक विज्ञापन हमारे सामने ला रखा, "अगले महीने एक डॉग शो होने जा रहा है। क्यों न हम इस दूसरे वर्ग के लिए अपने पप्स को उसमें भाग दिलाएँ?"

विज्ञापन पढ़ कर हम दोनों भी एक साथ उछल पड़े।

अमरीकन कैनल क्लब द्वारा निर्धारित नियमों के आधार पर उस वर्ग में ६ और बारह महीनों के बीच की आयु के पप्स की नस्ल और बाजीगरी परखी जानी थी।

"ये जरूर तुम भाइयों के लिए ट्रॉफी जीत लाएँगे," हमारी माँ भी हमारे साथ उत्साहित हो लीं, "इन के वजन और ऊँचाई तो अमरीकन पैरामीटर्स के अपेक्षित ही है..."

अपने उस ग्यारहवें महीने में मिस्टी और टिफ्फी सत्तावन-सत्तावन किलो वजन तथा अढ़ाई-अढ़ाई फुट ऊँचाई पा चुके थे।

पप्स-विषयक एक किताब माँ के पास रहती थी जो सचित्र भी थी। उसी में से माँ ने पप्स को सधाने व हाँकने के सूत्र भी हमें उपलब्ध करा दिए।

हमारे पिता की तुलना में हमारी माँ हमारे पप्स से अधिक जुड़ी थीं। दोनों के स्नान व भोजन वह अपनी निगरानी में करवाती ही थीं, साथ ही उन्हें खूब दुलारतीं व पुचकारती भी रहतीं। किताब के उन सूत्रों को वेग दे रही चंद्ररूपिणी को भी यदा-कदा सराह दिया करतीं।

चंद्ररूपिणी को सराहते तो हमारे पिता भी थे। सच पूछें तो हमारे पप्स की दीक्षा से अधिक उन्हें चंद्ररूपिणी में रुचि थी। उसे सामने पाते ही प्रश्नों की झड़ी लगा दिया

करते, उस का स्कूल कैसा था? उसकी कक्षा में और कितनी लड़कियाँ थीं? वह उन्हें इधर घर पर क्यों नहीं लाती थी? क्या वे भी उस की तरह सुंदर थीं? नाजुक थीं? लजीली थीं? बल्कि चंद्ररूपिणी उनसे घबराने भी लगी थी। वह घर पर होते तो वह हमारे कमरे में नहीं ही आती। हमारा कमरा उसी पिछवाड़े वाले आँगन के साथ सटा था और उस की खिड़कियाँ आँगन ही में खुलती थीं। चंद्ररूपिणी हमें वहीं खिड़की से संकेत देती और आँगन से भी लोप हो जाती।

तथापि हमारा वह पूरा महीना चंद्ररूपिणी की संगति में अपने पप्स के शारीरिक प्रशिक्षण में बीता। और अंततः दोनों जान गए, हमारे किस आदेश पर उन्हें भौंकना था, किस पर हमसे हाथ मिलाना था, किस पर जमीन पर लोटना था, किस पर दूर फेंके गए गेंद को हमारे पास लाना था, फिरकना था या फिर अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होना था...

प्रतियोगिता के दिन तक वे खूब तगड़े भी हो लिए थे - पुष्ट टॉपलाइन, ठोस, दबीज हड्डी तथा दूर तक भरी घनी छाती से युक्त।

डॉग शो का समय नौ बजे सुबह से था किंतु हमारे पिता ने अपनी मोटर सात बजे ही पोर्च में ला खड़ी की थी।

उस समय हमारे घर पर दो मोटरें थीं किंतु घर की दूसरी मोटर हमारे दादा के अनन्य प्रयोग के लिए आरक्षित रखी जाती थी। और उसे उनके ड्राइवर के अतिरिक्त कोई और नहीं छूता था।

अपनी इस मोटर पर हमारे पिता का आधिपत्य था और हमारी माँ उसमें बहुत कम बैठती थीं। कारण, उसे हमारे पिता ही चलाते थे और हमारे माता-पिता शुरू से ही एक चुंबक के प्रतिमुख छोर रहे। लेकिन ठीक आठ बजे उस दिन माँ अगली सीट पर हमारे पिता की बगल में जा बैठीं, अपनी बगल में चंद्ररूपिणी को सहेजे।

पिछली सीट पर हम दोनों भाई, हमारे मिस्टी और टिफ्फी तथा उन के सामान के साथ उन का टहलुवा, किशोरीलाल बैठ लिए।

प्रतियोगिता के स्थल पर पहुँच कर चंद्ररूपिणी ने दर्शकों की पंडाल में हमारे माता-पिता के साथ अपना आसन ग्रहण नहीं किया।

हमारे साथ सीधी उस स्थान पर जा खड़ी हुई जहाँ कुत्ते व उनके संरक्षक जमा थे। उस जमाव में स्त्रियाँ और लड़कियाँ बहुत कम थीं फिर भी चंद्ररूपिणी निस्संकोच हमारे साथ बनी रही।

भाग लेने वालों में उन दिनों के जिलाधीश का चुस्त-दुरुस्त कौमोन-डोर भी था किंतु उसके कर्णधार दो अधेड़ चपरासी रहे थे। हमारी चंद्ररूपिणी जैसी दक्षता व तत्परता उनमें न थी।

मिस्टी और टिफ्फी ने अपनी पारी के सभी करतब चंद्ररूपिणी की अगुवाई में जिस सिद्धता तथा फुर्तीलेपन से निबाहे उसे देखते हुए निर्णायक-गण के लिए उन्हें विजयी घोषित करना अनिवार्य हो गया।

वंश की विशुद्धता तथा कद-काठी के मानक पर वर्ग दो के प्रतियोगियों में हमारा मिस्टी ट्रॉफी अपने नाम कर गया।

"भाई-बहन?" पुरस्कार वितरण कर रही जिलाधीश की पत्नी ने हम तीनों को कप व ट्रॉफी लेने के लिए एक साथ बढ़ते हुए देखा तो पूछ बैठीं।

"बहन नहीं, मित्र," चंद्ररूपिणी ने तपाक से उत्तर दिया।

"हमारी रिंगलीडर," अभिभूत होकर हम दोनों भाई भी बोल पड़े।

"गुड, वेरी गुड," वह मुस्कुराईं और बारी-बारी से हम तीनों की गाल थपथपा दीं।

अपने माता-पिता के पास लौटते समय हम भाइयों के हाथों में कप रहे और चंद्ररूपिणी के हाथ में ट्रॉफी। वह कप से ज्यादा भारी भी थी।

मोटर में बैठे तो हमारे फूले हुए दम के संग अपना दम चढ़ाती हुई चंद्ररूपिणी उल्लास-भरे स्वर में माँ से बोली, "आंटी जी आप की बात सच निकली। ट्रॉफी हमीं ने जीती। कप हमीं ने जीते..."

"हमीं? हमीं कहा तुमने? हमीं?" चोचलाए स्वर में माँ ने खींच कर कहा।

"हमीं ही तो कहेगी?" हमारे पिता ने दाँत निपोड़े, "तुम्हारे बेटों की मित्र है। वे उसे अपना रिंगलीडर मानते हैं। सोचते हैं वह कप, वह ट्रॉफी उसी ने उन्हें दिलाई है..."

"दिलाई है? या झपटी है?" माँ तीखी हो लीं, "बेटे तो दोनों मूर्ख हैं। भोले हैं। भूल जाते हैं पप्स हम पाले हैं। उन्हें खिलाते-पिलाते हम हैं। नहलाते-धुलाते हम हैं। उनके कप और ट्रॉफी पर हमारा हक बनता है, सिर्फ हमारा। किसी दूसरे का नहीं।"

"आप ठीक कह रही हैं, आंटी जी," चंद्ररूपिणी का उल्लास दूर जा छिटका, "मुझ से भूल हुई। मैं भूल गई टिफ्फी और मिस्टी आप के हैं, मेरे नहीं..."

"यह बात तुम्हें उस समय भी ध्यान में रखनी चाहिए थी जब विजेताओं को मंच पर बुलाया जा रहा था," माँ कड़कीं, "मगर नहीं। तुम्हें लोभ था। लोभ। चर्चा में आने का लोभ। अखबार में अपनी तसवीर देखने का लोभ... अपने को उनकी मालकिन दिखाने का लोभ..."

"नहीं आंटी जी," चंद्ररूपिणी के बोल रुँध चले, "मुझे ऐसा लोभ कतई नहीं था..."

"नहीं, माँ," हम ने माँ को टोकना चाहा।

"तुम दोनों चुप रहो," माँ चिल्लाईं,

"तुम दोनों भोले हो। बहुत भोले। इसकी चतुराई तुम्हारी समझ से बाहर है... तुम दोनों भोले हो अभी..."

"भोली तो यह नहीं ही है..." हमारे पिता के स्वर की गंभीरता संदिग्ध रही, "समझती सब है..."

दिल मसोस कर चुप बने रहने के सिवा हम भाइयों के पास कोई रास्ता न था।

हमें अपने माता-पिता से दुलार कम मिला, दुराग्रह ज्यादा। दोनों ही को अपनी मनमानी बोलने और चलाने की पूरी छूट थी। वह हमें कितना भी डपटते हम अपना मुँह खोलते नहीं, थामे रखते।

मोटर से उतरते ही चंद्ररूपिणी ने अपनी छत की सीध बाँधी।

न हमारी ओर देखा न हमारे मिस्टी व टिफ्फी की ओर।

"बड़ी बदतमीज लड़की है," हमारी माँ हम से बोलीं, "खबरदार जो तुम बच्चों ने इससे कभी बात की या इसे अपने या अपने पप्स के पास फटकने दिया।"

ट्रॉफी और कप जीत लाने का हमारा विजयोल्लास ओला हो गया।

उस पर पत्थर पड़ने अभी बाकी थे। जो उसी दिन की दोपहर ढलते ढलते हम पर बरसा गई।

हमारी दोपहर की नींद उस समय तक पूरी भी न हुई थी कि हमें मिस्टी व टिफ्फी की संयुक्त भौंक के बीच अपने पिता का चीत्कार सुनाई दिया। हम भाइयों को बारी बारी से पुकारने के साथ साथ।

हम दोनों तत्काल आँगन में निकल आए।

देखा, हमारे पिता औंधे मुँह जमीन पर लोट रहे थे और मिस्टी व टिफ्फी उन्हें घेरे थे। मिस्टी उनकी बाँहों को दबोच रहा था और टिफ्फी उनके घुटनों को।

उन्हें फटकारते हुए हम अपने पिता की ओर लपक लिए।

उन्हें छुड़ाने।

जमीन से ऊपर खड़ा करने।

"यह हुल्लड़ कैसा है?" जब तक माँ भी आँगन में चली आईं।

"यह पिल्ले पगला गए हैं," हमारे पिता तमके, "इनका घर पर बने रहना अब खतरे से खाली नहीं... इन्हें यहाँ से हटवाना ही पड़ेगा..."

जभी मिस्टी व टिफ्फी अपनी भौंक छोड़कर उस साइकल के चक्कर काटते हुए रिरियाने लगे जो हमारे पिता की बगल में गिरी पड़ी थी।

साइकल चंद्ररूपिणी की थी।

"यह साइकल यहाँ गिरी क्यों पड़ी है? और ये पप्स इसके गिर्द यह कैसा विलाप कर रहे हैं?"

"साइकल इन्हीं पागल कुत्तों ने इधर लुढ़काई है। मैं बता रहा हूँ यह पागल हैं। इन्हें यहाँ से भेजना ही पड़ेगा। आज ही। अभी..." हमारे पिता ने हठ पकड़ लिया, "पुलिस एनिमल कंट्रोल यूनिट को अभी बुलवाता हूँ..."

"नहीं माँ," हमने माँ से विनती की, "इन्हें मत जाने देना। ये पागल नहीं हैं..."

"मैं जानती हूँ। ये पागल नहीं हैं। पगलाया कोई और है। ये पूरे होशमंद हैं। होश खोया कोई और है," माँ ने व्यंग्य कसा।

"सँभल कर बात करो," हमारे पिता गरजे, "वरना तुम भी पागल करार कर दी जाओगी..."

हमारे पिता हमारे दादा की इकलौती संतान थे और उन का कोई भी कहा वह बेकहा नहीं जाने देते थे।

पुलिस के पशु नियंत्रण विभाग को हमारे दादा ने यकायक अपने स्टाफ से फोन करवाया और एक घंटे के भीतर एक पुलिस जीप हमारे घर के फाटक पर आन पहुँची।

पुलिस विभाग के पशु नियंत्रण यूनिट के सदस्य लिए।

उन्हें आँगन का रास्ता दिखाने से पहले हम भाइयों को हमारे कमरे में बंद कर दिया गया। हमारे पिता के शब्दों के साथ, "मैं नहीं चाहता वे बाहरी लोग मेरे बेटों को गोहार मारते सुनें या देखें..."

हमारी खिड़कियों ही ने हमें दिखाया... पुलिस कर्मियों द्वारा मिस्टी व टिफ्फी को सी.ई. मिक्सचर, क्लोरो-फॉर्म व ईथर सुँघाते हुए...

मिस्टी व टिफ्फी को अचेत होते हुए...

पुलिसकर्मियों द्वारा उनकी अचेतावस्था की पुष्टि करते हुए...

अंततः उन्हें उठा कर अपने साथ ले जाते हुए...

अगली दोपहर हमारे लिए दूसरा आघात लाई।

स्कूल से लौटे तो छत की ओर जा रही सीढ़ियों के पास एक ठेले को खड़े पाया। उसमें चंद्ररूपिणी के परिवार का सामान लादा जा रहा था। उसके पिता की निगरानी में।

अपने बस्तों समेत हमने उनके पैर जा छुए।

"खुश रहो," उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया। सहज भाव से। कटुता से रिक्त स्वर में।

'चंद्ररूपिणी के बगैर?' मन में उठ रहे संदेह को हमने गले में दबा दिया।

सीढ़ियों का रुख किया और चंद्ररूपिणी के कमरे में जा पहुँचे।

वह अपनी माँ के साथ तख्त पर बैठी थी : भौचक्की व आतंकित।

हमें देखते ही रो पड़ी।

हम भी अपनी रुलाई रोक नहीं पाए।